ISSN 2348-3857

वन अधिकार अधिनियम 2006 : आदिवासी मुक्ति का एक राजनीतिक मिथक

Research Reinforcement
ISSN 2348-3857

डॉ. हरवीर सिंह डागुर

व्याख्याता, राजनिति विज्ञान विभाग
एम.एस.जे. महाविद्यालय, भरतपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

स्वतंत्रता के बाद वनों के संरक्षण एवं जनजातियों के पैतृक आवासों की स्वायत्ता को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार के 'वनों' के विषय को राज्य सरकारों को सौप दिया तथा उसे राज्य सूची का विषय बना दिया। लेकिन, राज्यों ने जंगलों को आमदनी के स्त्रोत की तरह उपयोग किया और आदिवासी निरंतर अपने वनों पर पैतृक अधिकार से वंचित होते गये, वन माफिया और सरकारी प्रतिनिधियों के बीच की सॉठ - गॉठ और भ्रष्ट तरीके से वन उत्पादों के दोहन ने वनों की कटाई को बढ़ावा दिया। इसी समस्या के निदान के लिए 1976 में संविधान संशोधन करके 'वनों' को राज्य सूची से निकालकर समवर्ती सूची में डाल दिया, 1980 में संसद वन संरक्षण अधिनियम बनाया और अनियंत्रित एवं अनियमित तरीके से वन भूमि के विस्थापन को रोकने का प्रयास किया गया। वन अधिकार अधिनियम -2006 को जनजातियों एवं वनों में लम्बे समय से निवास कर रहे अन्य वनवासी समुदायों के लोगों द्वारा अपनी आजीविका के हक को पुन: पाने के लिए किये गये संघर्ष के प्रतिफल के रूप में देखा गया है। इस अधिनियम ने वनवासी समुदायों को एक उम्मीद की किरण तो प्रदान की है, लेकिन उनके साथ हुए ऐतिहासिक अन्याय को दूर करने के लिए जरूरी है कि सरकार एवं प्रशासन मिलकर ईमानदारी से काम करे अधिनियम के मूल उद्देश्य को पाने के लिए कानूनी पेचों को आधार बनाने के बजाय वास्तविक भावना के अनुसार काम करें तभी जाकर सरकार आदिवासियों को दिए वादे को पूरा करने में कामयाब हो सकेंगीं।

संकेताक्षर : *वन अधिकार, वनवासी समुदाय, संवैधानिक-विधिक उपाय, जनजाति वनाधिकार अधिनियम*

वन अधिकार अधिनियम -2006[1] को जनजातियों एवं वनों में लम्बे समय से निवास कर रहे अन्य वनवासी समुदायों के लोगों द्वारा अपनी आजीविका के हक को पुन: पाने के लिए किये गये संघर्ष के प्रतिफल के रूप में देखा गया है। ब्रिटिश साम्राज्य ने वनों से आर्थिक लाभ की प्राप्ति के लिए भारत के वनों का अंधाधुंध दोहन किया तथा आदिवासियों के विद्रोहों को दबाने के लिए इस दोहन की प्रक्रिया को कानूनी जामा भी पहनाया गया। देश की अधिकतर वनभूमि तथा बेकार पड़ी भूमि को राज्य की सम्पत्ति घोषित कर दिया गया जिससे देश के विभिन्न हिस्सों से जनजाति समुदाय अपने पैतृक निवास स्थानों से बेदखल हो गये।

कानूनों की आड़ में वनों के उत्पादों एवं वनभूमि पर सरकारी नियंत्रण और आदिवासी समुदायों की बेदखली की प्रक्रिया स्वतंत्र भारत में भी अपने बदले रूप के साथ जारी रखी गयी जिसके कारण देश में जगह-जगह आदिवासी समुदायों से जुड़े संगठनों में जोरदार विरोध एवं आंदोलनों की राह अपनाई। इन्हीं विरोधों के दबाव में भारत सरकार ने वनों में निवास करने वाले समुदायों को उनका हक देने के लिए एक कानून बनाने की पहल की, जिसे वन अधिकार अधिनियम-2006 के नाम से जाना जाता है। लेकिन क्या वह यह अधिनियम आदिवासियों की आजीविका से जुड़ी मूलभूत समस्याओं का समाधान करने में सफल हो पाया है, क्या इसके प्रावधान वनवासियों के साथ हुए ऐतिहासिक अन्याय को न्याय का रास्ता दिखा पायेगें ? इन सवालों का विश्लेषण करने से पहले यह जरूरी है कि आदिवासियों के वनभूमि एवं वनउत्पादों पर अधिकारों से संबंधित बनाई गयी सरकारी नीतियों एवं कानूनों को इतिहास के आईने में देखा जाए। स्वतंत्रता से पूर्व औपनिवेशिक भारत में राज्य एवं वन, राज्य एवं आदिवासी, आदिवासी एवं वनों के बीच संबंधों एवं उसके पीछे के निहित उद्देश्यों का भी विश्लेषण करना जरूरी है।

औपनिवेशिक दौर में जंगलों के नियमितिकरण की प्रक्रिया को सुचारू रूप से चलाने के लिए बनाये गये कानून अंग्रेजों के आर्थिक हितों के पैरोकारी थे, इस दौर की नीतियों ने जंगलों के प्रति आदिवासियों की परंपरागत निर्भरता को गहरी चोट पहुंचाई। अंग्रेजों ने औद्योगिक कच्चे माल की पूर्ति के लिए वनों का अधिकाधिक दोहन किया। इस वनादोहन से होने वाले लाभों की, अंग्रेजों ने राजाओं के साथ भी हिस्सेदारी कायम की तथा बेहतर प्रबंधन के नाम पर वनों पर राज्य के नियंत्रण को मजबूत करने की प्रक्रिया आरंभ की।[2] वनों पर नियंत्रण को और बढ़ाने के लिए 1865 में वन अधिनियम लागू किया गया। इस अधिनियम के माध्यम से ब्रिटिश भारत सरकार को वनों पर कानून अधिकार प्रदान कर दिया गया।[3] स्वतंत्र भारत में वन भूमि कानूनों एवं नीतियों का ढाँचा औपनिवेशिक राज्य में बने कानूनों की अगली कड़ी साबित हुआ, औपनिवेशिक सरकार ने बेहतर प्रबंधन एवं संरक्षण के नाम पर वनों पर नियंत्रण की जो नीतिगत प्रक्रिया आरंभ की उसकी वैधता हासिल करने के लिए अंग्रेजों ने उस समय के स्थानीय राजाओं को भी प्रक्रिया में शामिल किया तथा निजी वन जैसी संकल्पना की नींव रखी।

स्वातन्त्र्योत्तर भारत में वनों एवं आदिवासियों के अधिकारों से जुड़े कानूनों का आधार हम वन नीति 1894 और भारत वन अधिनियम 1927 में पाते हैं। इनमें आदिवासियों को अपने पैतृक वन अधिकारों से वंचित कर दिया गया और इसी बीच वनों का वैज्ञानिक दोहन करने के लिए वन अनुसंधान संस्थान देहरादून की स्थापना की ।

1927 के अधिनियम में ब्रिटिश शासन ने वनों पर अपने अधिकार एवं उनके दोहन की प्रक्रिया को व्यवस्थित कानूनी बनाने के साथ साथ आदिवासियों के रूढिगत अधिकारो को नजर अंदाज कर दिया, वनों को राज्य की संपत्ति घोषित करके लकड़ी व अन्य वन संसाधनों का दोहन शुरू हुआ। इस वन अधिनियम का उपयोग सिर्फ वन उत्पादों के दोहन के लिए ही नहीं किया गया बल्कि उन आदिवासियों को नियंत्रित करने के लिए भी किया गया ाजिनसे अंग्रेजी राज को लगातार चुनौती मिल रही थी। अंग्रेजों ने 1871 के आपराधिक जनजाति अधिनियम के तहत पहले ही कई आदिवासी समूहों को अपराधी की श्रेणी में डालते रहे थे।[4] 1927 के वन अधिनियम में वनों के तीन श्रेणियों में वर्गीकरण की प्रक्रिया का भी उल्लेख किया गया, जिन्हें आरक्षित वन संरक्षित वन और ग्रामीण वन कहा गया। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य संपत्ति अधिकारों के आधार पर वनों को विभाजन करना था और इसमें कहा गया कि सरकार किसी भी वन भूमि और बेकार पड़ी भूमि को आरक्षित वन घोषित कर सकती है। इन आरक्षित वनों में मानवीय हस्तक्षेप पूर्ण रूप से निषेध किया गया था जिसके कारण आदिवासियों की जीविका पर नकारात्मक प्रभाव में वृद्धि हुई। यद्यपि इस अधिनियम के माध्यम से फोरेस्ट सेटलमेन्ट ऑफिसर के पद का सृजन किया गया जिसे आदिवासियों के दावों को सुनिश्चित करने की असीम शक्ति दी गई थी।[5]

रिजर्व वनों को सुनिश्चित करने एवं वनों पर राज्य के नियंत्रण को कायम रखने के लिए स्वतंत्रता के बाद भी 1927 में बना अधिनियम जारी रहा, यद्यपि भारत के संविधान निर्माण में आदिवासियों को संरक्षण प्रदान करने के लिए नेहरू के 'जनजाति पंचशील सिद्धांत' को आदर्श रूप में माना गया।

भारतीय संविधान में भी आदिवासियों के अधिकारों को विशेष रूप से मान्यता दी गई है। मूल अधिकारों, नीति निर्देशक तत्वों 39 (अ), 39 (ब), 46, 48 (अ) में विशेष संरक्षण प्रावधान रखे गऐ हैं, आविवासियों/जनजातियों को संविधान के अनुच्छेदों 320, 332, 334 आदि के तहत् विशेष प्रावधान रखे गए हैं। अनुच्छेद 342 में राष्ट्रपति कही अनुसूचित जन जातियों को विनिर्दिष्ट करने की शक्ति आदि। संविधान का अनुच्छेद 244 विशेष रूप से जनजातियों की संस्कृति के संरक्षण एवं परंपराओं को सुरक्षा प्रदान करती है और आदिवासी समुदायों को राज्य की भीतर 'स्वायत्त रूप से कार्य' करने की व्यवस्था करती है।[6] पाँचवीं और छठी अनुसूची क्षेत्रों में जनजातियों की संस्थाओं को विशेष शासन ढांचों की स्थापना की शक्ति प्रदान की गई है। संबंधित राज्यों के गवर्नरों को जनजातियों के कल्याण एवं संरक्षण का भार सौपा गया है।

स्वतंत्रता के बाद वनों के संरक्षण एवं जनजातियों के पैतृक आवासों की स्वायत्ता को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार के 'वनों' के विषय को राज्य सरकारों को सौप दिया तथा उसे **राज्य सूची** का विषय बना दिया।[7] लेकिन, राज्यों ने जंगलों को आमदनी के स्त्रोत की तरह उपयोग किया और आदिवासी निरंतर अपने वनों पर पैतृक अधिकार से वंचित होते गये, वन माफिया और सरकारी प्रतिनिधियों के बीच की सॉठ - गॉठ और भ्रष्ट तरीके से वन उत्पादों के दोहन ने वनों की कटाई को बढ़ावा दिया।

इसी समस्या के निदान के लिए 1976 में संविधान संशोधन करके 'वनों' को राज्य सूची से निकालकर समवर्ती सूची में डाल दिया, 1980 में संसद वन संरक्षण अधिनियम बनाया और अनियंत्रित एवं अनियमित तरीके से वन भूमि के विस्थापन को रोकने का प्रयास किया गया। लेकिन वन संरक्षण के नाम पर यह अधिनियम आदिवासियों के वनों से वंचित करने का एक और हथियार बन

गया उन्हें बिना वैकल्पिक जगह प्रदान किये बिना ही निरंतर वन भूमि से निकाला जाने लगा जिससे आदिवासियों में रोष और गहरा होता गया। इस अधिनियम से वन भूमि को गैर-वन गतिविधियों के लिए उपयोग करने के राज्यों के अधिकार को भारत सरकार ने अपने अधिकार क्षेत्र में ले लिया। अब राज्य सरकारों को किसी भी तरह के प्रोजेक्ट क्रियान्वयन, यहाँ तक की वन क्षेत्र से बिजली की लाइन निकालने के लिए भी भारत सरकार से अनुमति लेनी पड़ती है।[8] वन संरक्षण अधिनियम, 1980 में वनों को उसी तरह परिभाषित किया गया है, जैसे 1927 के भारतीय वन अधिनियम में परिभाषित किया गया था। यद्यपि 1996 में सुप्रीम कोर्ट ने वन की परिभाषा को और बढ़ा दिया और उन क्षेत्रों को भी शमिल कर दिया गया जो राजस्व भूमि पर वन ग्राम के तौर पर अधिसूचित थे।[9] ये वन ग्राम अंग्रेजों द्वारा स्थापित किए गए थे इनमें वो आदिवासी मजदूर रहते थे जिन्हें अंग्रेज वनों के व्यवसायिक दोहन के लिए काम में लगाते थे। अंग्रेजों ने उन्हें वनों के कुछ भाग पर खेती करने के पट्टे जारी किये थे ताकि उनका जीविकोपार्जन होता रहे। स्वतंत्रता के बाद ये वनवासी राज्य सरकारों द्वारा संचालित वन गतिविधियों से रोजगार प्राप्त करते थे।

लेकिन सुप्रीम कोर्ट के आदेश के बाद इन वन ग्रामों के वनवासियों का भविष्य खतरे से घिर गया। आज राज्य वनों का 60 प्रतिशत, 187 जनजाति संकेन्द्रित जिलों में स्थित है जमींदारी प्रथा के उन्मूलन के बाद भी आज देश के 23.84 प्रतिशत क्षेत्र पर वन विभाग का कब्जा है- जो देश का सबसे बड़ा जमींदार है और करीब 10 मिलियन उन लोगों की जीविका को नियंत्रित करता है जो संरक्षित और आरक्षित वन क्षेत्र में अनिश्चितता का जीवन जीते हैं तथा उनका जीवन पूर्ण रूप से वनोत्पादों पर निर्भर करता है।[10] 1985 में 'पर्यावरण एवं वन मंत्रालय' का गठन किया गया, तथा 1988 में नयी वन नीति की घोषणा की गई जिसमें सरकार ने वनों के दोहन से अपना ध्यान पर्यावरण संरक्षण की तरफ आकर्षित किया तथा पर्यावरण स्थिरता, पारस्थितिकी संतुलन, मौसमी संतुलन की तरफ खास जोर दिया गया।

1988 की वन नीति में एक और महत्वपूर्ण बात यह थी कि उसमें आदिवासियों के वन भूमि पर परंपरागत अधिकार को मान्यता दी गई तथा वन प्रबंधन करने वाली एजेंसियों से आदिवासी को रोजगार देने तथा उनके रिवाजी अधिकारों के संरक्षण की बात कही गई। साथ ही आदिवासी और वनों के बीच सहभागितामूलक सरकार को मान्यता दी गई। जनजातियों की अर्थव्यवस्था को मजबूत करने के लिए एकीकृत क्षेत्रीय विकास कार्यक्रमों को मजबूत करने की बात कही गई थी।

वन विभाग और आदिवासियों के बीच संघर्ष लगातार चलता रहा इसी बीच मध्यप्रदेश काडर के रिटायर्ड आई ए एस अधिकारी बी. डी. शर्मा ने 'भारत जनआंदोलन' के माध्यम से आदिवासियों के पक्ष में जोरदार आंदोलन चलाया। इसी दबाव में भारत सरकार ने जनजातियों के मुद्दों को देखने के लिए एक कमेटी का गठन किया उसके बाद सैड्यूल एरियाज की पंचायतों तक संविधान के भाग IX के प्रावधानों के विस्तार के लिए दिलीप सिंह भूरिया कमेटी का गठन किया गया, भूरिया कमेटी ने क्रांतिकारी सिफारिशें पेश की। लोकसभा स्पीकर पी. संगमा और बी. डी. शर्मा के प्रयासों से लोक सभा में एक महत्वपूर्ण संविधान संशोधन बिल पास किया जा सका[12] जिसे पंचायत एक्सटेन्शन टू दा शिड्यूल एरियाज एक्ट 1996 का नाम दिया गया। इस अधिनियम के माध्यम से जन जाति बहुल क्षेत्रों की ग्राम सभाओं को महत्वपूर्ण शक्तियां प्रदान की गई। आदिवासी समुदायों की प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन, स्वयं और सरकार के लिए सशक्त किया गया। खनन, विकास कार्यो के लिए भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास, इन्फ्रास्ट्रक्चर प्रोजेक्टस के लिए भूमि अधिग्रहण के विषयों पर ग्राम सभा की सहमति आवश्यक कर दी गई। इस अधिनियम में राज्य सरकारों को यह निर्देश दिए गए कि शिड्यूल एरियाज में स्वायत्त शासन की स्थापना की जाए, ग्राम सभाएं निर्णय लेने की सर्वोच्च संस्थाएं होंगी।[13] इन सभी महत्वपूर्ण विशेषताओं से परिपूर्ण पंचायत एक्सटेन्शन टू दा शिड्यूल एरियाज एक्ट 1996 भी अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल नहीं हो पाया क्योंकि किसी भी नीति सफलता के लिए जिम्मेदार सरकार की नीयत का साफ होना जरूरी होता है और आदिवासियों के मुद्दे पर सरकार की नीयत कभी भी न्यायपूर्ण नहीं रही।

वनवासियों की स्थिति और भी खराब तब हुई जब वन महानिदेशक ने 3 मई 2002 को राज्यों के मुख्य सचिवों, वन सचिवों एवं सभी राज्यों के वन के प्रधान मुख्य वन संरक्षक को सर्कुलर जारी करके एक समयबद्ध कार्य योजना के तहत् सरकारी वन भूमि पर 30 सितम्बर 2002 तक किये गये अधिग्रहणों को खाली कराने का आदेश दिया गया। इससे पूरे देश के जनजाति बहूल इलाके में व्यापक अव्यवस्था की स्थिति पैदा हो गई।[14] 16 अगस्त 2004 को लोकसभा में तारांकित सवाल के जवाब में दी गई सूचना के तहत् बताया गया कि केवल मई 2002 से मार्च 2004 के बीच वन महानिदेशक द्वारा जारी आदेश के तहत 152,400,100 हेक्टेयर भूमि को आदिवासियों से खाली कराया गया, जिससे करीब 30 लाख आदिवासी, वनवासी अपने पैतृक आशियानों से बेदखल कर दिए गए, उनके घरों को जलाया गया, फसल नष्ट

कर दी गई, महिलाओं के साथ ज्यादती की गई तथा कई पुलिस फायरिंग में मारे भी गए। इस कार्यवाही के लिए सुप्रीम कोर्ट के 1996 के उस निर्णय को आधार बनाया गया जिसमें वन भूमि की परिभाषा को बढ़ाया गया था। इन्हीं तत्कालीन परिस्थितियों में आदिवासियों की तरफ से वन भूमि पर कानूनी हक की लड़ाई के लिए देश व्यापी आंदोलन चलाए गए। इन्हीं देश व्यापी आंदोलनों को भांपते हुए UPA सरकार ने अपने 2004 के न्यूनतम साझा कार्यक्रम में वनवासियों के अधिकारों के संरक्षण के लिए एक कानून बनाने की बात कही जिसकी परिणिति, 'अनुसूचित जनजाति और अन्य परम्परागत वनवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006 के रूप में हुई।[15]

इस अधिनियम की प्रस्तावना में कहा गया कि[16] पैतृक भूमि और उनके निवास स्थान पर वन अधिकार औपनिवेशिक काल के दौरान राज्य के जंगलों में समेकन में पर्याप्त रूप से मान्यता प्राप्त नहीं थी। साथ ही स्वतन्त्र भारत में भी ऐतिहासिक अन्याय के परिणामस्वरूप अनुसूचित जनजाति और अन्य परम्परागत वनवासियों के वन-निवास के अधिकारों का हनन लगातार होता रहा है, जो वन पारिस्थितिकी प्रणाली के अस्तित्व एवं स्थिरता के अभिन्न अंग हैं।

लेकिन क्या वास्तव में एक अधिनियम रूपी विधायी कलम, एक सदी से भी ज्यादा पुराने आदिवासियों के साथ राज्य के शोषणकारी चरित्र को बदल पाएगा ? क्या वनवासियों की राजनीतिक स्थिति में आधारभूत बदलाव ला पाएगा? इसका मूल्यांकन हम इस एक्ट के प्रावधानों के संदर्भ में कर सकते हैं। सबसे महत्वपूर्ण बिन्दु यह है कि इस अधिनियम के क्रियान्वयन की जिम्मेदारी नॉडल एजेंसी के तौर पर 'जनजाति कार्य मंत्रालय' को सौंपी गई। लेकिन जिस वन भूमि पर इस अधिनियम का क्रियान्वयन किया जाना है उस पर वन विभाग का अधिकार है जो पर्यावरण एवं वन मंत्रालय का विभाग है, इन दोनों मंत्रालयों के विरोधाभासी उद्देश्यों के बीच इसकी सफलता सवालों के घेरे में रही है। एक्ट में जनजातियों एवं अन्य वनवासियों को वन भूमि पर सिर्फ अधिकार देने की बात ही नहीं कही गई है बल्कि उन्हें कुछ कर्तव्य और जिम्मेदारियाँ भी प्रदान की गई है।[17]

यह अधिनियम वनवासियों को उस वन अधिकार की मान्यता देगा जिस पर वो वर्तमान में खेती कर रहे हैं इसमें जनजातियों के लिए कट ऑफ डेट 13 दिसम्बर 2005 और अन्य परंपरागत वनवासियों के लिए पिछले 75 साल से उस स्थान पर खेती करने के सबूत की मांग करता है। अनुच्छेद. 3(1)(अ), 4(3) और 4(6) में कहा गया है कि लोगों को केवल उनके जीवकोपार्जन की सीमा तक 13 दिसम्बर 2005 से पहले ''उनके कब्जे में भूमि के लिए प्रदान किया जाएगा।[18] इसका अर्थ है कि कोई आदिवासी आधे एकड पर खेती कर रहा हो उसे आधे एकड़ की मान्यता मिलेगी इससे ज्यादा नहीं और जो 10 एकड़ (2.5 हैक्टैयर) तो उसे इतनी ही मिलेगी और जो कुछ नहीं कर रहा है उसे कुछ नया अधिकार नहीं मिलेगा चाहे वह कितने भी समय से वहाँ निवास कर रहा हो।[19]

अधिनियम के अनुच्छेद 4(4) में यह कहा गया है कि कानून के तहत् मिलने वाले टाइटल/दावे को बेचा या स्थानान्तरण नहीं किया जा सकता है इस तरह यह उनकी वनभूमि के अधिकार को असीम अधिकार के तौर पर स्थापित नहीं करता है। इसमें यह भी कहा गया है कि मिलने वाले पट्टे की भूमि का कोई व्यवसायिक उपयोग नहीं किया जा सकता है यह सिर्फ आजीविका के लिए होगी। आदिवासियों की जीविका का आधार मुख्य रूप से सामुदायिक गतिविधियों पर टिका होता है और इस अधिनियम में सामुदायिक अधिकार की बात तो कहीं गई है। लेकिन उसके तहत् कितनी वन भूमि पर मान्यता मिलेगी ? वह कौन सी भूमि होगी, यह उस समुदाय के लोग को मिलने वाली 4-4 हेक्टेयर में से ही सुनिश्चित की जायेगी या अलग से दी जाएगी तथा उस पर पूरे समुदाय के अधिकार का, क्या आधार होगा, यह सुनिश्चित नहीं है। इससे आदिवासियों की परंपरागत सहिष्णुता एवं सामुदायिकता से परिपूर्ण गतिविधियों के नष्ट होने समस्या खड़ी हो जाएगी। इस एक्ट में वन भूमि अधिकार के नाम पर जिस तरह वन भूमि का अधिकार एकल परिवार को दिया जाता है जिसका रजिस्ट्रेशन सयुक्त रूप से पति पत्नि के नाम से होगा।[20] लेकिन इस एकल परिवार की अवधारणा अधिकतर आदिवासी समुदायों में नहीं है। साथ ही उस परिवार के आकार एवं भूमि के अधिकार के बीच संतुलन की समस्या भी उनकी जीविका से जुड़ा हुआ महत्वपूर्ण मुद्दा है जिसे एक्ट में कोई जगह नहीं है - भूमि की गुणवत्ता कैसी होगी, भविष्य में वनभूमि अधिकार का कैसे स्थानान्तरण होगा जैसे महत्वपूर्ण सवालों का जवाब अधिनियम में साफ नहीं है।[21]

अनुच्छेद 4(अ) में कहा गया है कि अधिनियम के तहत् मिलने वाले व्यक्तिगत अधिकार संयुक्त रूप से पति पत्नि के तौर पर रजिस्टर होंगे और यह अधिकार विरासतीय भी होंगे लेकिन इस खण्ड में उत्तराधिकार में लिंग समानता का कोई प्रावधान नहीं है क्योंकि कहा गया है कि एकल व्यक्ति के केस में या प्रत्यक्ष उत्तराधिकारी के नहीं होने पर 'पैतृक अधिकार अगले परिजन' को सौंपा जाएगा लेकिन उस उत्तराधिकारी का निर्धारण कैसे होगा यह समस्या होगी। क्योंकि पूर्व में स्थापित कानूनों के कारण

आदिवासी समुदायों पर हिंदू - उत्तराधिकार अधिनियम और भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम लागू नहीं होते हैं संपत्ति के उत्तराधिकार में केवल रिवाजी कानूनों को मान्यता दी गई है।

एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष इस अधिनियम का यह है कि यह अधिनियम वन वासी के किसी भी तरह के विस्थापन का प्रतिषेध करता है जब तक की उनके अधिकार को वैकल्पिक तौर पर मान्यता नहीं मिल जाती है साथ ही उनकी सहमति के बिना वन भूमि का स्थानान्तरण किसी भी गैर-वन गतिविधि के लिए नहीं किया जाएगा। लेकिन पर्यावरण एव वन मंत्रालय, भारत सरकार लगातार वन भूमि को बड़े औद्योगिक प्रोजेक्टों के लिए भू उपयोग परिवर्तन करता रहा है। जो इसका पूर्ण रूप से उल्लंघन है। अधिनियम में वन भूमि के लिए भू उपयोग परिवर्तन की अथॉरिटी ग्राम सभा को दी गई है। लेकिन इस संम्बन्ध में ग्राम सभाओं की नगण्य भूमिका भी समय-समय पर सामने आती रही है।

निष्कर्ष तौर पर यह कहा जा सकता है कि जनजाति वन अधिकार अधिनियम 2006 ने आदिवासी एवं अन्य वनवासी समुदायों को एक उम्मीद की किरण तो प्रदान की है, लेकिन उनके साथ हुए ऐतिहासिक अन्याय को दूर करने के लिए जरूरी है कि सरकार एवं प्रशासन मिलकर ईमानदारी से काम करे। अधिनियम के मूल उद्देश्य को पाने के लिए कानूनी पेचों को आधार बनाने के बजाय वास्तविक भावना के अनुसार काम करें तभी जाकर सरकार आदिवासियों को दिए वादे को पूरा करने में कामयाब हो सकेंगीं।

सन्दर्भ सूची

1. अनुसूचित जनजाति और अन्य परंपरागत वनवासी, वन अधिकार अधिनियम, 2006
2. बसु, एन.जी., वन और आदिवासी, मनीष प्रकाशन, कलकत्ता, 1987, पृ. 61
3. मधुरेश कुमार, फॉरेस्ट राईट एक्ट एण्ड पोलमिक्स ऑफ करैक्टिगं हिस्टोरिकल एन जस्टिस; इन बसु, सव्यसाची एडीसन, सस्टेनबिलटी ऑफ राईट आफटर ग्लोवलाईजेशन, सेज पब्लिकेशन इण्डिया, 2001, पेज 34
4. ए यांग आनन्द (सं.) (1995), अपराध और अपराध ब्रिटिश भारत में: औपनिवेशिक छोटा नागपुर में बारा, युसूफ (2009) में उद्धृत, 'विदेशी निर्माण और जनजातीय प्रतिवाद (टक्सन एरिजोना विश्वविद्यालय प्रेस): ईसाई धर्म का माध्यम'
5. मधुरेश कुमार, फॉरेस्ट राईट एक्ट एण्ड पोलमिक्स ऑफ करैक्टिगं हिस्टोरिकल एन जस्टिस; इन बसु, सव्यसाची एडीसन, सस्टेनबिलटी ऑफ राईट आफटर ग्लोवलाईजेशन, सेज पब्लिकेशन इण्डिया, 2001, पेज 35
6. उपर्युक्त पेज 55
7. दिग्विजय सिंह (द रियल इश्यूज) सेमिनार, 2005.
8. उपर्युक्त
9. उपर्युक्त
10. मधुरेश कुमार, फॉरेस्ट राईट एक्ट एण्ड पोलमिक्स ऑफ करैक्टिगं हिस्टोरिकल एन जस्टिस; इन बसु, सव्यसाची एडीसन, सस्टेनबिलटी ऑफ राईट आफटर ग्लोवलाईजेशन, सेज पब्लिकेशन इण्डिया, 2001, पेज 36
11. दिग्विजय सिंह (द रियल इश्यूज) सैमिनार 2005
12. देखें अनुसूचित जनजाति और अन्य परम्परागत वनवासी (वन अधिकार) अधिनियम, 2006
13. मधुरेश कुमार, फॉरेस्ट राईट एक्ट एण्ड पोलमिक्स ऑफ करैक्टिगं हिस्टोरिकल एन जस्टिस; इन बसु, सव्यसाची एडीसन, सस्टेनबिलटी ऑफ राईट आफटर ग्लोवलाईजेशन, सेज पब्लिकेशन इण्डिया, 2001, पेज 38
14. नन्दनी सुन्दर- लीगल ग्राउण्डस नेचुरल रिसोर्सेज आइडेंटिटी एण्ड द लॉ इन झारखण्ड आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस एडिसन, 2009, पेज 13
15. प्रस्तावना वन अधिकार अधिनियम, 2006, पृ. 1
16. प्रस्तावना वन अधिकार अधिनियम, 2006, भाग. III, अनुच्छेद-5
17. प्रस्तावना वन अधिकार अधिनियम, 2006, अनुच्छेद 3(1)(a), 4(3),4(6)
18. सव्यसाची (2011) में उद्धृत (4 मार्च 2011) www.indiatogether.org/2006/apr/law-forest .htm, अनुसूचित जनजाति और अन्य परम्परागत वनवासी वन अधिकार, 2006' अण्डर माइनिंग दा फाउन्डेशनल पोजिशन आफ दा फोरेस्ट, इकनामिक एण्ड पोलिटिकल इण्डिया वीकली 9 अप्रैल, पी की मूलभूत स्थिति को कम देखें। 55, वॉल्यूम XLVI, सं. 15
19. अनुसूचित जनजाति और अन्य परम्परागत वनवासी (वन अधिकार) अधिनियम, 2006, भाग-4 (4)
20. रेड्डी, एम. गोपीनाथ, लालकृष्ण, अनिल कुमार-इश्यूज रिलेटेड टू इम्लीमेन्टेशन आफ फारेस्ट राइट एक्ट इन आंध्र प्रदेश, इकनामिक एण्ड पोलिटिकल इण्डिया वीकली , अप्रेल 30, भाग. XLVI, नम्बर 18, 2011ए, पेज 73.